श्री वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड

श्री टोडरमल स्मारक भवन

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राजस्थान)

शीतकालीन परीक्षा - कार्यक्रम -2007

दिन व दिनांक	ग्रन्थ का नाम
शुक्रवार 12 जनवरी 2007	1. बालबोध पाठमाला भाग 1 (बालबोध प्रथम खण्ड) मौखिक 2. जैन बालपोथी भाग 1 (मौखिक) 3. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग 1 (प्रवेशिका प्रथम खण्ड) 4. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग 1 5. छहढाला (पूर्ण) 6. तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) पूर्वार्द्ध 7. मोक्षमार्गप्रकाशक (पूर्वार्द्ध) 8. जैन सिद्धान्त प्रवेशिका (गोपालदासजी बरैया कृत) 9. विशारद प्रथम खण्ड (प्रथम वर्ष)
शनिवार 13 जनवरी 2007	1. बालबोध पाठमाला भाग 2 (बालबोध द्वितीय खण्ड) मौखिक 2. जैन बालपोथी भाग 2 (मौखिक) 3. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग 2 (प्रवेशिका द्वितीय खण्ड) 4. तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग 2 5. द्रव्यसंग्रह (पूर्ण) 6. तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) उत्तरार्द्ध 7. लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका (सोनगढ़) 8. मोक्षमार्गप्रकाशक (उत्तरार्द्ध) 9. विशारद द्वितीय खण्ड (प्रथम वर्ष) 10. विशारद प्रथम खण्ड (द्वितीय वर्ष)
सोमवार 15 जनवरी 2007	1. बालबोध पाठमाला भाग 3 (बालबोध तृतीय खण्ड) मौखिक 2. वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग 3 (प्रवेशिका तृतीय खण्ड) 3. रत्नकरण्ड श्रावकाचार (पूर्ण) 4. पुरुषार्थसिद्धयुपाय (पूर्ण) 5. विशारद द्वितीय खण्ड (द्वितीय वर्ष)

नोट - (1) सुविधानुसार परीक्षा का समय प्रात: 9 से शाम 5 बजे के बीच कभी भी सैट कर सकते हैं।
(2) जहाँ एक से अधिक केन्द्र हों, वे आपस में मिलकर समय निश्चित करें।
(3) किन्हीं विषयों के छात्र आपस में टकराते हों तो परीक्षा सुविधानुसार दिन में दो बार ली जा सकती है।
(4) बालबोध पाठमाला भाग 1, 2, 3 और जैन बालपोथी भाग 1 व 2 की परीक्षायें मौखिक में लेवें। शेष सभी विषयों की परीक्षायें लिखित में लेवें।

वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 25 281 अंक : 5

प्रवचनसार पद्यानुवाद

शुभोपयोगप्रज्ञापनाधिकार

उपदेश दर्शन-ज्ञान-पूजन शिष्यजन का परिग्रहण।
और पोषण ये सभी हैं रागियों के आचरण।।२४८।।
तनविराधन रहित कोई श्रमण पर-उपकार में।
नित लगा हो तो जानना है राग की ही मुख्यता।।२४९।।
जो श्रमण वैयावृत्ति में छहकाय को पीड़ित करें।
वे गृही ही हैं क्योंकि यह तो श्रावकों का धर्म है।।२५०।।
दया से सेवा सदा जो श्रमण-श्रावकजनों की।
करे वह भी अल्पलेपी कहा है जिनमार्ग में।।२५१।।
भूखे-प्यासे दु:खीजन लख दुखित मन से जो पुरुष।
दया से हो द्रवित बस वह भाव अनुकंपा कहा।।३६।।•
श्रम रोग भूखरु प्यास से आक्रान्त हैं जो श्रमणजन।
उन्हें लखकर शक्ति के अनुसार वैयावृत करो।।२५२।।
ग्लान गुरु अर वृद्ध बालक श्रमण सेवा निमित्त से।
निंदित नहीं शुभभावमय संवाद लौकिकजनों से।।२५३।।
प्रशस्त चर्या श्रमण के हो गौण किन्तु गृहीजन।
के मुख्य होती है सदा अर वे उसी से सुखी हों।।२५४।।

• आचार्य जयसेन की टीका में प्राप्त ३६ वीं गाथा

ह्न डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

जगत तो इन्द्रजाल के समान है

पूज्यपाद आचार्य श्री देवनन्दि के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश के 39 वें श्लोक पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल श्लोक इसप्रकार है ह्न

निशामयति नि:शेषमिन्द्रजालोपम् जगत्।
स्पृह्यत्यात्मलाभाय गत्वान्यत्रानुतप्यते ।।

योगी समस्त जगत को इन्द्रजाल के समान समझते हुए आत्मस्वरूप की प्राप्ति की अभिलाषा करता है; किन्तु अन्य विषय (बाह्य परपदार्थों) में लग जाये तो पश्चात्ताप करता है।

(गतांक से आगे...)

समयसार के बंधाधिकार में कहा है कि नाना प्रकार के प्रयत्नों से या बुद्धिपूर्वक यह जीव किसी अन्य जीव को मारना-जिलाना अथवा सुखी-दु:खी करना चाहे तो यह इसके प्रयत्न का विषय नहीं है; क्योंकि इसके प्रयत्न से कार्य नहीं होता है।

प्रत्येक वस्तु अपने परिणाम से स्वयं परिणमन कर रही है, उसमें फेरफार करना जीव के सामर्थ्य की बात नहीं है; फिर जो धर्मी जीव हैं, वे तो स्वस्वरूप की प्राप्ति में ही तत्पर हैं; अत: वे परपदार्थ में फेर-फार की बुद्धि कैसे कर सकते हैं ?

जो यह जानता है कि इन्द्रजाल में सर्प अथवा हार दोनों में से कुछ भी नहीं है, उस जीव को हार को ग्रहण करने और सर्प को छोडनेरूप बुद्धि कैसे हो सकती है?

वस्त्रादि पहनना-निकालना, खाना-पीना, कमाना आदि जीव के अधिकार की बातें नहीं है। पुस्तकों को छपाने से जगत् में धर्म फैलेगा - यह भी जीव के बुद्धि का विषय नहीं है; किन्तु मूर्ख अज्ञानी जीव ऐसी ही बुद्धि करता रहता है।

यदि कोई जीव परद्रव्य में फेरफार कर सकता हो तो वह स्वद्रव्य और परद्रव्य दोनों की क्रिया का कर्त्ता बनेगा; किन्तु ऐसा होना संभव नहीं है।

जो स्वरूप श्रद्धा, ज्ञान व चारित्र में परायण हैं - ऐसे योगी परद्रव्यों से पूर्णत: उदास रहते हैं। **'होने योग्य कार्य होता है, मैं उसे कर नहीं सकता'** तथा **'न रुकने योग्य कार्य होता रहता है, मैं उसे रोक नहीं सकता'** - ऐसा वह निरन्तर विचार करता है।

प्रश्न : गृहस्थाश्रम में यह सब विचार कैसे हो सकते हैं ?

उत्तर : मुझसे भिन्न दूसरे जीव अथवा परद्रव्यों की एक भी पर्याय मेरे श्रद्धा-ज्ञान-वीर्य अथवा रागरूप नहीं हो सकती। तथा मेरी स्वभावपर्याय अथवा विभावपर्याय से पर का कार्य कदापि नहीं हो सकता - ऐसा विचार करते हुए धर्मी जीव गृहस्थाश्रम में भी वस्तुस्थिति को यथावत् जानता है और सम्पूर्ण परपदार्थों के प्रति उपेक्षाबुद्धि रखता है।

आँख की पलक झपकाना भी जब जीव के पुरुषार्थ का कार्य नहीं है तो एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कार्य कैसे करेगा ? अत: प्रत्येक कार्य अपनी योग्यता से स्वतंत्र ही होता है। शास्त्र/पुराण आदि में ऐसे हजारों दृष्टान्त हैं कि इस जीव ने दूसरे जीव पर दया की'; किन्तु उसे समझाते हुए आचार्य कहते हैं कि हे भाई ! ऐसे दृष्टान्त तो बहुत मिलेंगे; पर उनकी अपेक्षा समझने योग्य है।

किसी जीव के राग करने से कोई जीव बच गया; तब ऐसा कहने में आता है कि उसने इसे बचाया; किन्तु वास्तव में एक जीव की पर्याय में अन्य जीव क्या कर सकता है ? पर की दया पालनेरूप भाव से तो अपनी ही हिंसा होती है; किन्तु यह अज्ञानी जीव '**मैं पर का कार्य कर सकता हूँ**'- ऐसी मिथ्याबुद्धि से स्वयं अपना ही घात करता है।

त्यागी-व्रतियों को यह मिथ्याभ्रम रहता है कि हमने धन-सम्पत्ति, वस्त्रादि का त्याग किया है। अरे भाई ! क्या ये सब तुम्हारे थे ? जो तुमने इनको त्याग दिया। वास्तव में ऐसे जीवों ने अपने ज्ञाता-दृष्टा रूप धर्म को त्यागकर मिथ्याबुद्धि धारण कर रखी है।

'जीव परद्रव्य की रक्षा कर सकता है अथवा परद्रव्य को मार सकता है' - ऐसा भगवान का उपदेश नहीं है। यह तो अहितकारी मिथ्या-उपदेश है। आत्मा के श्रद्धा गुण का घात करनेवाला उपदेश है। यह इष्टोपदेश नहीं है।

प्रश्न : फिर हम शरीरादि की साज-सम्भाल आदि करें या नहीं ?

समाधान : अरे भाई ! जब परद्रव्य में कुछ भी करना जीव का विषय नहीं है, तो फिर करने और न करने की बात ही कहाँ रही ? भेदज्ञान हो अथवा केवलज्ञान हो, मिथ्याश्रद्धा हो अथवा क्षायिक सम्यक्त्व हो - ये सब जीव के विषय ही नहीं है;

अत: उनमें करने की बात भी नहीं है।

प्रत्येक पदार्थ अपने विशेष और व्यवस्थित कार्य का कर्त्ता स्वयं है; दूसरा कोई भी उसके कार्य का कर्त्ता नहीं। कोई किसी का उपकार-अपकार, निन्दा-प्रशंसा नहीं कर सकता। एक पदार्थ दूसरे पदार्थ में फेरफार नहीं कर सकता। करने-कराने रूप जो भी कथन होते हैं, वे सब निमित्त की अपेक्षा किये गये कथन हैं।

तीनलोक के नाथ सर्वज्ञदेव कहते हैं कि जगत में अनंत जीव और अनंतानंत पुद्गल द्रव्य हैं। यदि एक जीव या पुद्गल दूसरे जीव-पुद्गल का ग्रहण-त्याग करे तो उसका अस्तित्व ही क्या रहेगा ? प्रत्येक पदार्थ का अपना स्वतंत्र अस्तित्व है, उसमें अन्य द्रव्य का बिल्कुल भी हस्तक्षेप नहीं है।

तेरापंथी कहते हैं कि छहकाय के जीवों का घात न करना - ऐसा भगवान का उपदेश है और स्थानकवासी कहते हैं कि छहकाय के जीवों की रक्षा करना - ऐसा भगवान का उपदेश है।

उनसे कहते हैं कि जगत में अनंत द्रव्य है और उनका ज्ञान करना जीव का विषय है। छहकाय के जीवों की रक्षा करना या घात न करना जीव के विषय से बाहर है। यही भगवान का उपदेश है।

वास्तव में जीव पर को दु:ख दे ही नहीं सकता; फिर भी दूसरों को दु:खी न करो, मत मारो, रक्षा करो आदि जो कथन मिलते हैं, वे सब व्यवहार हैं। इसका अर्थ मात्र इतना ही है कि ऐसे कार्य नहीं करना चाहिये, जो पर के दु:ख में निमित्त बने।

अहाहा ! ऊर्ध्वलोक के स्वामी और तीन ज्ञान के धारी सौधर्म, ईशानेन्द्र आदि सौ इन्द्रों की उपस्थिति में सर्वज्ञ परमेश्वर, तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि में यह बात आई है कि तू तेरे स्वभाव में परायण हो ! अनंत ज्ञानस्वरूप आत्मस्वभाव में लीन हो और उसे प्रगट करने का पुरुषार्थ कर !! पर का कार्य करना तेरा विषय ही नहीं है; इसलिये परद्रव्यों की उपेक्षा करके अपने स्वभाव की अपेक्षा कर !! भगवान की इसी वाणी को संतों ने शास्त्रों में कहा है।

इस आत्मा की अपेक्षा से समस्त परद्रव्य अवस्तु हैं, अद्रव्य हैं, अक्षेत्र हैं, अकाल और अभाव हैं; इसीकारण समस्त जगत को इन्द्रजालसमान कहा है।

(क्रमश:)

चर्तुगति के भेद

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार की 16-17 वीं गाथा पर हुए आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरसगर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलत: इसप्रकार है ह्न

माणुस्सा दुवियप्पा कम्ममहीभोगभूमिसंजादा।
सत्तविहा णेरइया णादव्वा पुढविभेदणे।।16।।
चउदहभेदा भणिदा तेरिच्छा सुरगणा चउब्भेदा।
एदेसिं वित्थारं लोयविभागेसु णादव्वं।।17।।

मनुष्यों दो प्रकार के होते हैं - कर्मभूमिज और भोगभूमिज। नरक की भूमियों के भेद से नारकी सात प्रकार के होते हैं।

तिर्यंच 14 प्रकार के कहे गये हैं, देव चार प्रकार के होते हैं - इनका विस्तार लोकविभाग में से जानना चाहिये।

यह चारगति के स्वरूप-निरूपणरूप कथन है।

मनु की सन्तति मनुष्य है। भोगभूमि के अन्त में और कर्मभूमि के आदि में होने वाले कुलकर, मनुष्यों को आजीविका के साधन सिखाकर लालन-पालन करते हैं, वे मनुष्यों के पिता समान हैं। उन कुलकरों को मनु कहा जाता है।

मनुष्य दो प्रकार के हैं ह्न कर्मभूमिज और भोगभूमिज।

उनमें कर्मभूमिज मनुष्य भी दो प्रकार के हैं ह्न आर्य और म्लेच्छ। पुण्यक्षेत्र में रहने वाले आर्य तथा पापक्षेत्र में रहनेवाले म्लेच्छ हैं।

भोगभूमिज मनुष्य आर्य नाम के धारक हैं; वे जघन्य, मध्यम अथवा उत्तम क्षेत्र में रहते हैं; और एक पल्योपम,दो पल्योपम अथवा तीन पल्योपम आयुवाले हैं।

रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तम:प्रभा और महातम:प्रभा नाम की सात पृथ्वियों के भेद से नारकजीव सात प्रकार के हैं। प्रथम नरक के नारकी एक सागरोपम की आयुवाले, द्वितीय नरक के तीन सागरोपम, तृतीय

के सात सागरोपम, चतुर्थ के दश सागरोपम, पंचम के सत्तरह सागरोपम, छठे के बाईस सागरोपम और सप्तम के तैंतीस सागरोपम आयुवाले हैं।

अब विस्तार के भय से संक्षेप में तिर्यंचों के चौदह भेद कहते हैं ह्न

1-2. सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, 3-4. बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, 5-6. द्वीन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, 7-8. त्रीन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, 9-10. चतुरेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, 11-12. असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त, 13-14. संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और अपर्याप्त।

देवों के चार निकाय (समूह) हैं। भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी।

इन चार गतियों में आत्मा के भान बिना इस जीव ने अनन्त भव धारण किये हैं। सहजचैतन्यपरमतत्त्व के अभ्यास बिना इसने अनादि से नरकादि गतियों के भयंकर दुख अनन्तबार भोगे हैं। जिसे चतुर्गति के भव धारण न करना हो उसे अपने सहज चैतन्यतत्त्व को पहिचान कर उसका अभ्यास करना चाहिये।

इन चतुर्गति के जीवों के भेदों का विशेष विस्तार लोकविभाग नामक परमागम में देखना चाहिये। यहाँ (इस परमागम में) आत्मस्वरूप के निरूपण में अन्तराय का हेतु होने से सूत्रकर्त्ता पूर्वाचार्य महाराज ने वे विशेष भेद निरूपित नहीं किये हैं।

आगे टीकाकार दो श्लोक कहते हैं ह्न

स्वर्गे वास्मिन्मनुजभुवने खेचरेन्द्रस्य दैवा ह्न
ज्योतिर्लोके फणपतिपुरे नारकाणां निवासे।
अन्यस्मिन् वा जिनपतिभवने कर्मणां नोऽस्तु सूति:
भूयो भूयो भवतु भवत: पादपंकेजभक्ति:।।28।।

हे जिनेन्द्र ! दैवयोग से मैं स्वर्ग में होऊँ, इस मर्त्यलोक में होऊँ, विद्याधर के स्थान में होऊँ, ज्योतिष्क देवों में होऊँ अथवा किसी भी स्थान में होऊँ; नागेन्द्र के नगर में होऊँ, नारकियों के निवास में होऊँ, जिनपति के भवन में होऊँ अथवा किसी भी स्थान में होऊँ; परन्तु मुझे कर्म का उद्भव न हो और पुन: पुन: आपके पाद-पंकज की भक्ति हो।

16-17 वीं गाथा में चार गति का कथन किया। वहाँ मुनिराज कहते हैं कि प्रभो ! मैं अपने स्वभाव की ही भावना में हूँ। अपने चैतन्ययोग में ही एकाग्र हूँ; परन्तु बीच में राग के कारण कदाचित् दैवयोग से स्वर्गादि में होऊँ तो वहाँ भी पुन: पुन: आपके चरणकमल की भक्ति ही हो ह्न कर्म का उद्भव न हो। चैतन्य की दृष्टि से चारों गतियों का नकार वर्तता है। चतुर्गति में चाहे जिस स्थान में होऊँ; किन्तु मेरी दृष्टि तो चैतन्य में ही रहे, मुझे कर्म उत्पन्न ही न हो। चैतन्य में दृष्टि से कर्म उत्पन्न ही न होवे। जो पिछले कर्म हैं, उससे आगे अब नवीन कर्म उत्पन्न ही न हो; और हे नाथ ! चैतन्य की दृष्टिपूर्वक सदा आपके पाद-कमल की ही भक्ति हो।

मुझे चार गतियों में उत्पन्न होने की भावना नहीं है; अपितु चैतन्य की ही भावना है। कर्मोद्भव न हो और आत्मोद्भव ही हो ह्न ऐसी भावना है। जब शुद्धता में स्थिर न रह सकूँ, तब आपके चरण-कमल की सेवा का शुभभाव हो।

इसप्रकार अन्तरंग निश्चयभक्तिपूर्वक व्यवहार की बात की है ह्न उसमें भावना तो स्वरूप की ही है।

स्वभाव की सामर्थ्य को देख !

देह में विराजमान, पर देह से भिन्न एक चेतन तत्त्व है। यद्यपि उस चेतन तत्त्व में मोह-राग-द्वेष की विकारी तरंगें उठती रहती है, तथापि वह ज्ञानानन्द स्वभावी ध्रुवतत्त्व उनसे भिन्न परम पदार्थ है। जिसके आश्रय से धर्म प्रगट होता है। उस प्रगट होनेवाले धर्म को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहते हैं।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रदशा अन्तर में प्रगट हो, इसके लिये परम पदार्थ ज्ञानानन्दस्वभावी ध्रुवतत्त्व की अनुभूति अत्यन्त आवश्यक है। उस अनुभूति को ही आत्मानुभूति कहते हैं। वह आत्मानुभूति जिसे प्रकट हो गई, पर से भिन्न चैतन्य आत्मा का ज्ञान जिसे हो गया, वह शीघ्र ही भव-भ्रमण से छूट जायेगा। पर से भिन्न चैतन्य आत्मा का ज्ञान ही भेदज्ञान है। यह भेदज्ञान और आत्मानुभूति सिंह जैसी पर्याय में भी उत्पन्न हो सकती है और उत्पन्न होती भी है; अत: हे मृगराज ! तुझे इसे प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये।

हे मृगराज ! तू पर्याय की पामरता का विचार मत कर, स्वभाव के सामर्थ्य की ओर देख !

– तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ, पृष्ठ-47

छहढाला प्रवचन

रे जीव ! सुन, यह तेरे दु:ख की कथा

एक श्वास में अठदस बार, जन्म्यो मर्यो भर्यो दु:खभार।
निकसि भूमि-जल-पावक भयो, पवन प्रत्येकवनस्पति थयो।।४।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान दौलतरामजीकृत छहढाला पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

निगोददशा में रहते हुए इस जीव ने एक श्वासप्रमाण काल में अठारह बार जन्म-मरण के दु:ख भोगे है। सिद्धदशा आत्मिक आनन्द से भरपूर है और निगोददशा दु:ख के भार से भरी है। यहाँ तो जरा-सी प्रतिकूलता आने पर या अपमानादि होने पर जीव एकदम त्रस्त हो जाता है; परन्तु हे भाई ! क्या तू भूल गया कि पूर्व में अनन्तकाल तक तूने कैसे-कैसे दु:ख में उठाये हैं ? अरे, इतने भयंकर दु:ख उठाये कि उनके स्मरणमात्र से ही वैराग्य हो जाए।

सामान्य जीवों को दु:ख की तीव्रता समझाने के लिए अठारह बार जन्म-मरण की बात यहाँ की है; तथापि यह सब संयोगकथन है, वास्तव में देहादि के प्रति अन्तरंग में जो एकत्वबुद्धि और तीव्र मोह है, वही अनन्तदु:ख है।

नरकगति में भी छेदन-भेदन, तैल में तलना इत्यादि रूप अनन्त दु:ख हैं, जिनका वर्णन आगे करेंगे; किन्तु वहाँ भी जीव के अन्तरंग में विद्यमान मिथ्यात्वभाव ही दु:ख का मूल कारण हैं।

यह जीव अपने को भूलकर परद्रव्य और विषयों में मोहित हो रहा है, शरीर की अनुकूलता में सुख और प्रतिकूलता में दु:ख मानता है। लाख-दो लाख रुपये प्राप्त होने पर अपने को बड़ा मानता है और उनके अभाव में स्वयं को छोटा मानता है, जीवन से निराश हो जाता है, इसप्रकार मोह के कारण यह जीव हैरान हो रहा है।

इसप्रकार पंचेन्द्रिय जीव ही नानाप्रकार के दु:ख उठाते हुए प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं तो एकेन्द्रियादि के दु:खों की क्या बात करें ? वे तो अकथ्य-अनंत हैं।

एकेन्द्रिय को बाह्य में मात्र शरीर है, अन्य कोई सामग्री उसके पास नहीं है। प्राप्त शरीर को भी वह जीव एक श्वासप्रमाण काल में अठारह बार छोड़ता है और

पुन: नया धारण करता है, तब तो एक अंतर्मुहूर्त में हजारों भव हो जाते हैं, उन दु:खों का क्या वर्णन करें ?

संसार-शरीर और भोगादि में जो अपनत्व बुद्धि है, उसका ही यह दु:ख है। हे भाई ! देह तू नहीं, तू तो उपयोगस्वरूप आत्मा है - ऐसी सच्ची समझ से ही समस्त दु:ख मिट सकता है।

अनन्त जीव एक ही घर(शरीर) में साथ-साथ रहे; आहार एक, शरीर एक, एक साथ सबका जन्म और एक साथ सबका मरण होता है; तो क्या उनके परस्पर में कोई नाता-रिश्ता होगा ? भाईचारा होगा ? नहीं ! एक साथ, एक क्षेत्र में रहने से भी उनका एक-दूसरे के साथ कोई लेना-देना नहीं है। प्रत्येक जीव, उनके गुण, उनके परिणाम सब भिन्न-भिन्न हैं। भले शरीर सबका एक हो; परन्तु जीव सब अलग-अलग हैं; वहाँ से मरकर कोई जीव पुन: वहीं जन्मता है, कोई अन्य गति में जन्म लेता है।

प्रत्येक जीव स्वयं अकेला अपने अनन्त दु:ख को भोगता है। नारकी जीव तो पंचेन्द्रिय है, जबकि निगोद के जीव को एक स्पर्शइन्द्रिय ही है, उसकी दशा अत्यन्त हीन है; राग-द्वेष-मोहपरिणामों की अत्यधिक तीव्रता है; अत: वे महादु:खी हैं।

वास्तव में मोह ही दु:ख और मोह का अभाव ही सुख है। छेदन-भेदन या जन्म-मरण रूप दु:ख तो संयोग की बात है। अन्दर में देह की तीव्र ममता से ही यह जीव मूर्च्छित हो रहा है और उसी का इसे अनन्त दु:ख है।

जिसप्रकार वस्त्रादि से तीव्र ममत्व करनेवाला मनुष्य बार-बार वस्त्र बदलता है; उसीप्रकार निगोद का जीव एक अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार जन्म-मरण करके शरीर बदलता रहता है। वहाँ उसे मोह की तीव्रता है; क्योंकि मोह की तीव्रता बिना ऐसा प्रसंग हो ही नहीं सकता।

अरहन्तों के मोह का नाश हो जाने से पुन: नवीन देह धारण करने का कार्य नहीं रहा। सम्यग्दृष्टि को भी अल्प मोह शेष रहने से यदि एक-दो शरीर धारण करना पड़े तो उसे उत्तम देह की ही प्राप्ति होती है, निकृष्ट देह प्राप्त नहीं होती।

इसके विपरीत देह की तीव्र ममता से मूर्च्छित जीव अपने चैतन्य स्वभाव को भूलकर, देह को ही सर्वस्व मानकर नवीन-नवीन पर्यायें/शरीर धारण करता है।

देह से भिन्न अपना स्वतंत्र अस्तित्व ही उसे दिखाई ही नहीं देता।

निगोद में तो 'तू जीव है' - ऐसा सुनने या विचारने का अवकाश ही नहीं रहा। उसे न तो कान हैं, न मन; वह न कुछ देख सकता है और न कुछ बोल सकता है - अब ऐसे दु:खों का क्या कहना ?

तथा जैसे किसी रूपवान राजकुमार को पकड़कर, मजबूत लोह-साँकल से बाँधकर, उसके नाक-मुँह आदि सभी अंगों में ताँबे का गरम रस डाला जाए, आँखों व कानों में लोहे के मजबूत कीले दागकर उसकी जीभ काट दी जाए, तदुपरांत लोहे की मजबूत कोठी में बन्द कर, चारों तरफ अग्नि जलाकर सेका जाये, तब भी उसे जो दु:ख-वेदना हो, उससे भी अनन्त दु:ख नरक में है; फिर भी यह तो पंचेन्द्रिय का दु:ख है। निगोद के जीव का दु:ख तो नरक के दु:खों से अनन्तगुणा है, जो कि वचनों से कहना संभव नहीं है।

प्रतिकूल संयोग के कथन द्वारा उसका कुछ वर्णन किया जाता है; किन्तु अन्तरंग दु:ख कैसे समझाया जाये ? जैसे सिद्धों का सुख अतीन्द्रिय है, वैसे निगोद का दु:ख भी इन्द्रियों से पार है; वहाँ बाह्य प्रतिकूलतायें दिखाई न दे, तथापि अन्तरंग में जीव के दु:ख का पार नहीं है।

अत: हे भाई ! यह आत्मा ऐसा है कि जिसका अन्तर्मुख होकर अनुभव करने से अपार अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति होती है। जो उसका वेदन करे, उसे ही उसकी खबर पड़ती है। अनन्त सुख से भरपूर आत्मा की आराधना में ही अनन्त सुख है और उसकी विराधना में अनन्त दु:ख हैं।

सिद्धों का सुख और निगोद का दु:ख ह्न ये दोनों वचनातीत हैं। लोकाग्र में अनन्त सिद्ध भगवान एक क्षेत्र में एक साथ रहते हैं; किन्तु वे सब अपने-अपने सुख में मग्न हैं। इसके विपरीत अनंत निगोदया जीव एक क्षेत्र व एक स्थान में एक साथ रहते हुए अपने-अपने दु:ख का वेदन कर रहे हैं। उनके दु:खों का क्या स्वरूप कहे ? पंचाध्यायीकार कहते हैं कि जीवों के अनन्त दु:खों में जो बुद्धिगोचर दु:ख है, वह तो दृष्टान्त द्वारा समझाये जा सकते है; परन्तु अबुद्धिगोचर जो बहुत दु:ख है, वह दृष्टान्त द्वारा समझाये नहीं जा सकते। **(क्रमश:)**

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : हमने सुना है कि अध्यात्म में पुण्य को भी पाप कहते हैं? ऐसा क्यों ?

उत्तर : जगत में पाप को तो पाप सभी कहते हैं, परन्तु अनुभवी ज्ञानीजन तो पुण्य को भी पाप कहते हैं। हिंसा, झूठ, चोरी आदि को तो जगत पाप मानता है, परन्तु शुभराग को भी ज्ञानीजन पाप कहते हैं; क्योंकि स्वरूप में से पतित होकर ही शुभराग उठता है। अत: वह भी पाप है; अस्तु शुभराग में भी स्व की हिंसा होती है। प्रवचनसार गाथा 77 में कहा है कि जो जीव पुण्य-पाप में भेद मानता है, अन्तर मानता है; वह मिथ्यादृष्टि है और अनन्त संसार में भटकता है।

इसीप्रकार योगसार गाथा 71 में श्री योगीन्दुदेव कहते हैं ह्न

जो पाउ वि सो पाउ मुणि, सव्वु इ को वि मुणेइ।
जो पुण्णु वि पाउ वि भणइ, सो बुह को वि हवेई॥

जो पाप है, उसे सारा जगत पाप ही कहता है; किन्तु जो पुण्य को भी पाप कहते हैं, वे बुद्धिमान विरले ही होते हैं।

आ हा हा। यह बात तो भव्यजीव के गले उतरेगी, जिसे अन्तर में भव का भय लगा हो और भय से मुक्त होना हो।

प्रश्न : चैतन्यस्वरूप आत्मा के भान बिना ही यदि पुण्य करते जावें तो हानि ही क्या है ?

उत्तर : चैतन्यस्वभाव के भान बिना जो कुछ भी पुण्य करने में आता है, वह राख के ऊपर गोबर लीपने के समान है। जैसे राख के दल के ऊपर गोबर का लीपन टिक नहीं सकता, लीपन तो कठोर भूमि पर ही टिकता है; वैसे ही त्रिकाली चैतन्यस्वभाव के भान बिना परलक्ष से जो कुछ भी पुण्य किया जाता है, वह राख के ऊपर किये गए लीपन के समान है। वह पुण्य अल्पकाल में ही संक्रमित होकर पापरूप हो जायेगा, वह पुण्य दीर्घकाल तक टिकेगा नहीं ह्न ऐसा जानकर चैतन्यस्वभावरूप भगवान आत्मा का भान अवश्य करना चाहिए।

प्रश्न : योगसार में पुण्य को भी पाप क्यों कहा है ?

उत्तर : वैसे तो पुण्य शुभराग है, परन्तु वह स्वरूप से पतित करता है। इसलिए वहाँ कहा है कि पाप को पाप सभी जगत कहता है, किन्तु अनुभवी जीव पुण्य को भी पाप कहते हैं। जयसेनाचार्य ने भी कहा है कि पुण्य है, वह अशुभ से बचाता है, परन्तु शुद्धस्वरूप से पछाड़ता है ह्न पतित करता है, अत: पुण्य को भी पाप कहा है। यहाँ तो जिसे आत्मा का हित करना हो, उसकी बात है। वैसे तो अनन्तबार शुभ करके नवमी ग्रैवेयक तक गया, फिर भी एक भव कम नहीं हुआ।

प्रश्न : अशुभ की अपेक्षा तो शुभ ठीक है या नहीं ?

उत्तर : आत्मज्ञान न होने पर शुभ अशुभ दोनों भावों को बन्ध का कारण जानने के बाद व्यवहार से अशुभ की अपेक्षा शुभ को ठीक कहा जाता है, पर यह बात ज्ञानी की अपेक्षा है। चरणानुयोग में तीव्र कषाय घटाने के लिए मन्दकषाय करना ह्न ऐसा भी कहा जाता है। पर यहाँ अध्यात्म शास्त्रों में तो आत्मा में राग की गन्ध भी नहीं ह्न यह बात है।

प्रश्न : जो शुभ-अशुभ परिणाम में भेद मानता है, उसे मिथ्यादृष्टि कहा है; तो हम आत्मा की बात सुनें-चर्चा करें, अथवा दुकान पर बैठकर व्यापार-धन्धा करें, ये दोनों समान ही हैं न ?

उत्तर : शुभ-अशुभ परिणाम में व्यवहार से भेद है। व्यापार में तीव्रकषाय है, आत्म-चर्चा सुनने में मन्दकषाय है, इसलिए व्यवहार से भेद है; किन्तु इन शुभाशुभ दोनों का लक्ष्य पर की तरफ ही है ह्न ऐसा बतलाकर शुभ में से हितबुद्धि छुड़ाकर स्वद्रव्य का लक्ष्य कराया है।

प्रश्न : आप शुभ भाव को छुड़ाते हैं न ?

उत्तर : हम तो अनादिकाल से चली आ रही शुभभाव में हितबुद्धि छुड़ाते हैं। पहले शुभराग में आदरबुद्धि छुड़ाते हैं, उसके बाद अस्थिरता भी छुड़ाते हैं। शुभराग आवेगा तो अवश्य; क्योंकि शुद्धोपयोग बिना शुभराग छूटता नहीं; फिर भी उसमें से हितबुद्धि छुड़ाते हैं, शुभराग से अथवा शुभ करते-करते आत्मकल्याण हो जावेगा - ऐसी मान्यता छुड़ाते हैं।

भगवान महावीर निर्वाणोत्सव सानन्द सम्पन्न

1. **देवलाली (महा.) :** यहाँ दिनांक 19 से 23 अक्टूबर तक **डॉ. सुभाषजी चाँदीवाल** परिवार मुम्बई की ओर से रत्नत्रय मण्डल विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर गुरुदेवश्री के टेप प्रवचन और तत्त्ववेत्ता **डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल** के प्रवचनसार के आधार से अलिंगग्रहण पर मार्मिक प्रवचनों के अतिरिक्त पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री, पण्डित हेमचन्दजी 'हेम' एवं पण्डित अनिलजी शास्त्री भिण्ड के प्रवचनों का लाभ मिला।

विधि-विधान के समस्त कार्य बाल ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद के निर्देशन में पण्डित मधुकरजी जलगाँव, पण्डित सुबोधजी शास्त्री शाहगढ़ ने सम्पन्न कराये।

निर्वाण दिवस के अवसर पर महिला मण्डल द्वारा विशेष प्रश्नमंच का आयोजन किया।

2. **मंगलायतन-अलीगढ़ :** यहाँ दिनांक 20 से 24 अक्टूबर तक श्री कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान उज्जैन एवं श्री आदिनाथ कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट अलीगढ़ के तत्त्वावधान में निर्वाण महोत्सव एवं शिक्षण शिविर सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर प्रतिदिन गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त पण्डित कैलाशचन्दजी अलीगढ़, पण्डित विमलदादाजी झांझरी, पण्डित बाबूभाई महेता, ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना, पण्डित प्रदीपकुमारजी झांझरी, पण्डित अरहंतप्रकाशजी झांझरी, पण्डित तेजकुमारजी गंगवाल, पण्डित शांतिलालजी सौगाणी तथा स्थानीय विद्वानों में पण्डित अशोकजी लुहाड़िया, पण्डित राकेशजी शास्त्री, श्री पवनजी जैन, पण्डित देवेन्द्रकुमारजी एवं पण्डित सुधीरजी शास्त्री के प्रवचन एवं कक्षाओं का लाभ मिला।

इस अवसर पर ब्र. अभिनन्दनजी शास्त्री के निर्देशन में पण्डित संजयजी शास्त्री एवं श्री भरतजी मेहता के सान्निध्य में भगवान महावीर पंचकल्याणक विधान सम्पन्न हुआ।

निर्वाण महोत्सव के दिन कैलाश पर्वत पर निर्वाण लाडू अर्पितकर अहिंसा रैली निकाली गई। दिनांक 23 अक्टूबर को पण्डित राकेशजी शास्त्री को द्रव्य-गुण-पर्याय पर लिखित शोध विषय के लिये विशेषरूप से सम्मानित किया गया।

3. **कोलकाता :** यहाँ श्री सीमंधर जिनालय, पद्दोपुकुर में दिनांक 19 से 22 अक्टूबर, 06 तक भगवान महावीर पंचकल्याणक विधान का आयोजन किया गया। इस अवसर पर पण्डित राजकुमारजी शास्त्री बांसवाड़ा एवं पण्डित प्रवीणकुमारजी शास्त्री जयपुर के प्रवचनों का लाभ मिला। विधान के समस्त कार्य पण्डित अभिनयजी शास्त्री जबलपुर ने सम्पन्न कराये।

4. **दिल्ली:** यहाँ दीपावली पर्व के अवसर पर श्री महावीरस्वामी पंचकल्याणक विधान का आयोजन किया गया। इस अवसर पर ब्र. पण्डित कैलाशचन्दजी अचल के मार्मिक प्रवचन हुए। विधान के समस्त कार्य ब्र. पण्डित जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद के निर्देशन में सम्पन्न हुये।

5. **छिन्दवाड़ा :** आदिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर गोलगंज में दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल एवं अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन के संयुक्त तत्त्वावधान में निर्वाण महोत्सव के अवसर पर भगवान महावीर और गौतम गणधर की पूजनोपरान्त शोभायात्रा निकाली गई।

ब्र. यशपालजी द्वारा धर्म प्रभावना

बीना (म.प्र.) : यहाँ श्री दिगम्बर जैन मंदिर बड़ी बजरिया में 18 से 23 अक्टूबर तथा 28 अक्टूबर से 2 नवम्बर तक श्री लब्धिसार ग्रन्थ पर दोनों समय ब्र. यशपालजी जैन जयपुर के मार्मिक प्रवचनों का लाभ मिला। दिनांक 2 नवम्बर को आगामी 25 जनवरी, 07 से होने वाले पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के प्रचारार्थ जिनेन्द्ररथ का उद्घाटन हुआ। 2 नवम्बर को ही **खिमलासा में** आचार्य विद्यासागर प्रवचन हॉल में पंचकल्याणक की महिमा विषय पर आपके प्रवचन के अतिरिक्त पण्डित सुदीपजी बीना व श्री वीरेन्द्रजी कठरया का उद्बोधन प्राप्त हुआ।

भोपाल स्थित चौक मंदिर में आपके द्वारा ही समयसार कलश 110 एवं अनुभव प्रकाश ग्रन्थ के आधार से मिश्रधर्म अधिकार पर गुरुदेवश्री द्वारा किये गये प्रवचनों का विवेचन किया गया। साथ ही भोपाल ब्रह्मचर्याश्रम में आपके तथा पण्डित राजमलजी द्वारा मोक्षमार्गप्रकाशक के सातवें अधिकार पर तत्त्वचर्चा का आयोजन सम्पन्न हुआ।

अष्टान्हिका महापर्व सम्पन्न

मुम्बई : यहाँ श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु समाज वृहन्मुम्बई के तत्त्वावधान में दिनांक 29 अक्टूबर से 5 नवम्बर 06 तक अष्टान्हिका महापर्व के अवसर पर मुम्बई के विभिन्न उपनगरों में निम्नानुसार धर्मप्रभावना हुई -

बोरिवली में पण्डित शैलेषभाई शाह, **दहीसर** में पण्डित चन्दूभाई मेहता, **दादर** में पण्डित नरेन्द्रजी जबलपुर, **मलाड (वे.)** व **एवरशाइन नगर** में पण्डित विपिनजी शास्त्री, **भायन्दर** में पण्डित प्रवेशजी भारिल्ल करेली, **मलाड (ई.)** में पण्डित अनिलजी शास्त्री व पण्डित जितेन्द्रजी शास्त्री तथा डॉ. मानमलजी जैन कोटा के प्रवचनों का लाभ साधर्मियों ने लिया।

दिल्ली : यहाँ श्री दिगम्बर जैन कुन्दकुन्द कहान आत्मार्थी ट्रस्ट के निर्देशन में दिल्ली के उपनगर भारतनगर में प्रथम बार श्री गणधर वलय ऋषिमण्डल विधान का आयोजन किया गया। विधि-विधान के सम्पूर्ण कार्य ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री के निर्देशन में पण्डित सुनीलजी धवल भोपाल, पण्डित अमितजी शास्त्री, पण्डित संदीपजी शास्त्री, पण्डित आशीषजी शास्त्री, पण्डित निकलंकजी शास्त्री द्वारा कराये गये। प्रतिदिन रात्रि में ब्र.जतीशचन्दजी शास्त्री के प्रवचनों का लाभ मिला। आत्मार्थी ट्रस्ट पर भी पंचपरमेष्ठी विधान सम्पन्न हुआ।

देवलाली (महा.) : यहाँ श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट के तत्त्वावधान में पर्व के अवसर पर पण्डित रमेशचन्दजी शास्त्री जयपुर एवं पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा इन्दौर के प्रवचनों एवं कक्षाओं का लाभ प्राप्त हुआ।

मुमुक्षु एवं विद्वत् महासम्मेलन तथा प्रशिक्षण शिविर देवलाली में -

जयपुर। पूज्य कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट, देवलाली के संयोजकत्व में दि.5 से 7 मई, 07 तक अध्यात्मतीर्थ देवलाली में मुमुक्षु एवं विद्वत् महासम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है। यह जानकारी जयपुर में आयोजित शिक्षण-शिविर के अवसर पर श्री मुकुन्दभाई खारा, श्री कान्तिभाई मोटानी एवं प्रवीण भाई वोरा आदि ट्रस्टियों की उपस्थिति में उक्त ट्रस्ट की ओर से पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री ने दी। आपने प्रमुख मुमुक्षु भाईयों एवं विद्वत्वर्ग से पधारने का अनुरोध करते हुए बताया कि श्री अखिल भा. दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल इस समारोह की अध्यक्षता करेंगे।

समारोह में सामाजिक एकता तथा वर्तमान परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में मुमुक्षुओं की भावी भूमिका विषय पर विस्तार से चर्चा की जाएगी।

इस अवसर पर विद्वत्वर्ग से समाज को क्या आशाएँ व अपेक्षाएँ हैं; उनकी दशा और दिशा पर भी गहन चर्चा की जाएगी।

स्मरण रहे कि इसी क्रम में दिनांक 8 मई से 25 मई तक देवलाली में शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया जायेगा। **ह्न अखिल बंसल**

हार्दिक शुभकामनायें !

1. **जबलपुर (म.प्र.) :** श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक **श्री श्रेयांसकुमार शास्त्री, जबलपुर** को एम.ए. संस्कृत विभाग में सर्वोत्कृष्ट अंक प्राप्त करने पर रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर द्वारा आयोजित दीक्षांत समारोह में **राष्ट्रपति डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम** द्वारा तीन स्वर्ण पदकों से सम्मानित किया गया।

साथ ही जबलपुर मुमुक्षु मंडल के युवा विद्वान **पण्डित मनोज जैन** को उनके शोध कार्य '**आचार्य उमास्वामी व्यक्तित्व्य कर्तृत्व**' पर पी. एच. डी. की उपाधि से एवं मंडल की ही सक्रिय सदस्या **श्रीमती पूजा अनुभव जैन** को एल. एल. बी. विभाग में सर्वोच्च अंक प्राप्त करने पर स्वर्ण पदक से सम्मानित किया गया। **ह्न विराग शास्त्री (अध्यक्ष)**

2. **लखनऊ (उ.प्र.) :** न्यायमूर्ति लोकायुक्त श्री एन.के. मेहरोत्राजी के मुख्यातिथ्य में श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के स्नातक **डॉ. विमलकुमार जैन जयपुर** को उनके द्वारा शैक्षिक, साहित्यिक, सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र में की गई उल्लेखनीय सेवाओं के लिए प्रशस्ति पत्र, 21000/- रुपये की राशि के साथ **विश्व मैत्री सेवा सम्मान 2006** प्रदान कर सम्मानित किया गया। आपको पहले भी राज. सरकार व विश्वविद्यालय आदि की ओर से सम्मानित किया जा चुका है।

उक्त सभी को वीतराग-विज्ञान (मासिक) की ओर से हार्दिक शुभकामनायें !

वैराग्य समाचार

1. **जयपुर निवासी श्री रमेशचन्दजी गोधा** का दिनांक 18 अक्टूबर को देहविलय हो गया है। आप टोडरमल स्मारक भवन में चलनेवाली स्वाध्याय सभा का दोनों समय नियमित लाभ लेते थे। आपके हृदय में वीतरागी तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार की उत्कृष्ट भावना रहा करती थी। स्मारक ट्रस्ट द्वारा चलनेवाली समस्त गतिविधियों में आपका सदैव सहयोग रहता था।

2. श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर के स्नातक पण्डित सुनीलकुमार नाके की माता **श्रीमती वसन्तमाला दिगम्बरराव नाके,** डासाला (महा.) निवासी का दिनांक 16 अक्टूबर, 2006 को हृदयगति रुक जाने से देहावसान हो गया है। आप अत्यन्त सरल स्वभावी, धार्मिक महिला थीं। आपकी स्मृति में जैनपथप्रदर्शक एवं वीतराग-विज्ञान (मराठी) हेतु 201/-रुपये की राशि प्राप्त हुई है।

3. **ललितपुर निवासी** श्रीमती शीलन टड़ैया धर्मपत्नी स्व.सेठ निहालचन्द टडैया का दिनांक 23 सितम्बर को शांत परिणामों से देहावसान हो गया है। आपकी स्मृति में जैनपथप्रदर्शक एवं वीतराग-विज्ञान को 1001/-रुपये की राशि प्राप्त हुई है।

4. **रामगंजमण्डी निवासी** श्रीमती चन्द्रकलाजी रांवका का देहावसान हो गया है। आपकी स्मृति में आपके सुपुत्र श्री मुकेशजी रांवका द्वारा जैनपथप्रदर्शक एवं वीतराग-विज्ञान को कुल 1100/-रुपये प्राप्त हुये।

5. **सोनगढ़ निवासी** श्रीमती निर्मलाबेन नरोत्तमदास दोशी का 92 वर्ष की आयु में 26 अक्टूबर, 2006 को सिकन्दराबाद में शांत परिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आप सोनगढ़ में ही स्थायीरूप से रहकर तत्त्वज्ञान का लाभ लिया करती थीं। तथा श्री मूलशंकर देसाई की आप आप पुत्री थी। आपके द्वारा दिये गये धार्मिक संस्कारोंवश आपकी दोनों सुपुत्रियाँ श्रीमती ऊषाबेन पंखानी एवं रेणुकाबेन कोठारी सिकन्दराबाद भी निरन्तर तत्त्वज्ञान का लाभ लेती हैं।

6. **मलकापुर निवासी** डॉ. सुमतिचन्दजी जैन का 70 वर्ष की आयु में दिनांक 21 अक्टूबर को देहावसान हो गया। आप मलकापुर समाज के मार्गदर्शक के साथ-साथ धर्ममर्मज्ञ भी थे। स्थानीय मंदिरजी में प्रतिदिन प्रवचन किया करते थे।

दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही निर्वाण की प्राप्ति करें - यही भावना है।

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

30 नव. से 6 दिसम्बर, 06	**बांसवाड़ा**	**पंचकल्याणक**
24 दिस. से 28 दिसम्बर	**देवलाली**	**विधान एवं शिविर**
23 से 25 जनवरी, 07	**चन्देरी**	**छहढाला शिविर**
25 से 31 जनवरी, 07	**बीना**	**पंचकल्याणक**
02 से 06 फरवरी, 07	**मंगलायतन**	**वार्षिकोत्सव**
15 से 21 फरवरी, 07	**अलवर**	**पंचकल्याणक**

साधना चैनल पर
डॉ. भारिल्ल के प्रवचन

अब प्रातः 6.40 से 7.00 बजे तक

इसकी फोटो कापियाँ कराके उचित स्थानों पर लगा दें।

मन्दिरजी में सूचना देवें और देखने वाले मित्रों को भी बता दें।

ज्ञातव्य है कि दिनांक 1 नवम्बर 2006 से इन्दौर (म.प्र.) के भास्कर भक्ति टी.वी. चैनल पर भी प्रतिदिन रात्रि 9 से 10 बजे तक डॉ. भारिल्ल के प्रवचनों का नियमित प्रसारण हो रहा है । नवम्बर माह में प्रसारित होने वाले प्रवचनों का प्रसारण विजय-इन्द्रा, अशोक-आशा, विनी-मिनल, अनुभूति-वंदित एवं श्रीमती कमलप्रभा बड़जात्या द्वारा किया जा रहा है।

वीतराग-विज्ञान (दिसम्बर-मासिक) • 24 नवम्बर 2006 • वर्ष 25 • अंक 5